
श्री कृष्ण जन्माष्टमी
व्रत कथा
भाषा-टीका एवं
माहात्म्य सहित



माहात्म्यसहित

श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रतकथा

भाषा-टीका सहित

प्रमुख विक्रेता :

नारायण एण्ड को० बुकसेलर्स
सालिमपुर अहरा, पटना-3, फोन-2685702

नारायण बुक डिपो
अनुग्रह सदन लेन, खजांची रोड, पटना-४

प्रकाशक :

प्रकाश पब्लिकेशन

9/2409, गली नं० 13, कैलाश नगर, दिल्ली-31, फोन : 22073171

मूल्य
बारह रुपये

पूजन-सामग्री

सोने की राधाकृष्ण की मूर्ति	पुष्पमाला	पंचरत्न की पुड़िया	मकरंद कपड़ा
चाँदी का सिंहासन	तुलसीमाला	मलमृत्तिका	चौकी, पीढ़ा
चाँदी का छत्र	ऋतुफल	पेड़ा	अतर का फाहा
चाँदी की कटोरी	नैवेद्य-मालपुआ	बताशा	गुलाबजल
चाँदी की प्याली	माखन	अबीर	पंचपात्र, यज्ञोपवीत
श्यामजी को वस्त्र-उपवस्त्र आदि	मिश्री	बुक्का	गोबर, पंचमेवा
वरण सामग्री, वस्त्र-उपवस्त्र, जनेऊ	दूध-दही	रोली	सुतली, नारियल
सुपारी, कुशासन, ताम्रखण्ड	शहद	चन्दन	आठवर्ष बीत जाने पर उद्यापन करना
तिल, यव	चीनी	धूप	आठ ब्राह्मणों का वरण करना
पान छुट्टा, पान बीड़ा	घृत	रूई	सोने की अंगूठी का दान करना
सुपारी	दीपक	कपूर, चावल	
अक्षत	केले का खम्भ	दियासलाई	
गंगाजल	बन्दनवार	चढ़ाने के वस्त्र	

श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत-कथा

भाषा-टीका सहित

इन्द्र उवाच–ब्रह्मपुत्र ! मुनिश्रेष्ठ ! सर्वशास्त्रविशारद! । ब्रूहि व्रतोत्तमं देव येन मुक्तिर्भवेन्नृणाम् । तद्व्रतं वद भो ब्रह्मन् भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥1॥ *नारद उवाच*–त्रेतायुगस्य चान्ते हि द्वापरस्य समागमे । दैत्यः कंसाख्य उत्पन्नः पापिष्ठो दुष्टकर्मकृत् ॥ 2 ॥ स्वसा तस्य महाश्रेष्ठा देवकी नाम शोभना । तस्याः पुत्रोऽष्टमो यो हि हनिष्यति च दानवम् ॥ 3 ॥ *इन्द्र उवाच*–ब्रूहि नारद यत्नेन वार्ता दैत्यस्य तस्य हि । किमत्र देवकी पुत्रः स हनिष्यति

इन्द्र ने कहा–हे ब्रह्मपुत्र, हे मुनिश्रेष्ठ, हे सर्वशास्त्रविशारद, हे देव, व्रतों में उत्तम उस व्रत को कहिए, जिस व्रत से प्राणियों को मुक्ति लाभ हो और हे ब्रह्मन्, उस व्रत से प्राणियों को भोग और मोक्ष भी प्राप्त हो ॥1॥ नारद ने कहा–त्रेतायुग के अन्त तथा द्वापरयुग के प्रारम्भ काल में नीच कर्म को करने वाला पापी–कंस नाम का दैत्य उत्पन्न हुआ ॥2॥ उस कंस की महाश्रेष्ठ सुन्दरी बहिन देवकी नाम की थी । उस देवकी से उत्पन्न आठवाँ पुत्र दानव 'कंस' को मारेगा ॥ 3 ॥ इन्द्र ने कहा–हे नारद, उस दैत्य की सविस्तार कथा कहिए । क्या पुत्र (आठवाँ) अपने मामा (कंस) का हनन करेगा–अर्थात् मारेगा ?॥ 4 ॥ नारद ने कहा–किसी

मातुलम् ॥ 4 ॥ *नारद उवाच*– पृष्टो दैत्येन दैवज्ञः पापिष्ठेन दुरात्मना । केनैव विधिना विप्र ! मम मृत्युर्भविष्यति ॥ 5 ॥ *दैवज्ञ उवाच*– यादवेन्द्रस्य या भार्या वसुदेवस्य देवकी । तत्सुता दानवाधीश विद्यते चारुभाषिणी ॥ 6 ॥ तस्याः पुत्रोऽष्टमो यो हि कृष्णो नाम परन्तपः । भास्करोदयवेलायां त्वामेव स हनिष्यति ॥ 7 ॥ *कंस उवाच*– दैवज्ञ मतिमाञ्छ्रेष्ठ यत्नात् कथय मां प्रति । कस्मिन् मासे दिने काले स मां कृष्णो हनिष्यति ॥ 8 ॥ *दैवज्ञ उवाच*–माघे मासे सिते पक्षे सप्तम्यां दानवेश्वर । भविष्यति महद्युद्धं कृष्णस्यैव महात्मनः ॥ 9 ॥ संग्रामे निर्जितं तत्र त्वामेव स हनिष्यति । अतोऽर्थे चात्मनः कंस कुर्याद्रक्षां

समय की बात है कि दुरात्मा पापी दैत्य कंस ने दैवज्ञ (ज्योतिषी) से पूछा–हे विप्र, किस प्रकार मेरी मृत्यु होगी ? ॥ 5 ॥ ज्योतिषी ने कहा–हे दानवाधीश, यादवेन्द्र वसुदेव की पत्नी देवकी, जो बोलने में बड़ी ही चतुर तथा आपकी बहिन है ॥ 6 ॥ उसका आठवाँ पुत्र जो कि शत्रुओं को परास्त करेगा और कृष्ण नाम से विख्यात होगा । वही सूर्योदय के समय तुम्हारा हनन करेगा ॥ 8 ॥ कंस ने कहा–हे दैवज्ञ, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, कहिए–यत्नपूर्वक किस मास, दिन और समय में वह मुझे मार डालेगा ?॥ 8 ॥ दैवज्ञ ने कहा–हे दानवेश्वर, माघ मास के शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि को महात्मा कृष्ण के साथ तुम्हारा घोर संग्राम होगा ॥ 9 ॥ उसी संग्राम में तुम्हें वह मार डालेगा । इसलिए हे कंस !

प्रयत्नतः ॥ 10 ॥ *नारद उवाच*–इत्युक्तस्तेन भो शक्र कंसं कृष्णो हनिष्यति । न चात्र संशयः कार्यस्त्वया शक्र सुरेश्वर ॥ 11 ॥ *इन्द्र उवाच*–तस्य दैत्यस्य या वार्ता वदतां मुनिपुङ्गव । कथं कृष्णः समुत्पन्नः कथं कृष्णो हनिष्यति ॥ 12 ॥ केनैव विधिना तेन युध्यते च मुहुर्मुहुः । ब्रह्मपुत्र मुनिश्रेष्ठ यत्नात् कथय मां प्रति ॥ 13 ॥ कंसो नाम महादैत्यः प्रतीहारमथाऽब्रवीत् । देवकी मत्स्वसा या च रक्षितव्या त्वयैव सा ॥ 14 ॥ एवमस्त्विति तेनोक्तं तस्मिन् काले च सा गता । सरोवरे जलव्याजाद् घटमादाय दुःखिता ॥ 15 ॥ वटवृक्षोऽस्ति तत्रैव घनच्छायोऽतिदीर्घकः । उपविष्टा तरुच्छाया रुदती देवकी तदा ॥ 16 ॥

तुम अपनी रक्षा का प्रयत्न करना ॥ 10 ॥ नारद ने कहा–हे शक्र, दैवज्ञ के यों कहने पर कंस को श्रीकृष्ण मारेंगे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिए । अर्थात्-सुरेश्वर, कंस की मृत्यु दैवज्ञ के बताये हुए समय पर श्रीकृष्ण के हाथों से अवश्य ही होगी ॥ 11 ॥ इन्द्र ने कहा–हे मुनिपुङ्गव, उस दैत्य की कथा कहिए और कैसे कृष्ण की उत्पत्ति होगी ?और कृष्ण के द्वारा कैसे मौत आवेगी ?॥ 12 ॥ किस प्रकार बार-बार उसके साथ युद्ध होगा ? हे ब्रह्मपुत्र, हे मुनिश्रेष्ठ, उस पूरी कथा को मुझसे कहने की कृपा कीजिए ॥ 13 ॥ कंस नामक दैत्य ने अपने द्वारपाल (प्रतीहार) से कहा–मेरी प्रिय बहन की पूर्ण रक्षा करना ॥ 14 ॥ उस द्वारपाल द्वारा (एवमस्तु) ऐसा कहने पर (और कंस के जाने पर) उसी समय देवकी दुःखित हो जल के बहाने घड़े को लेकर तालाब पर गयीं ॥ 15 ॥ तदनन्तर वहाँ मेघ (बादल) की छाया की तरह बहुत-बड़े लम्बे वट वृक्ष के नीचे बैठकर वहीं देवकी रुदन

यशोदा नाम तन्वङ्गी आगता च तदैव हि । सुशोभनं वचस्तत्र देवकीं प्रति साऽब्रवीत् ॥ 17 ॥ किमर्थं रोदनं कान्ते क्रियतेऽत्र त्वया भृशम् । वद कल्याणि वाचं मे प्रसादं कुरु मां प्रति ॥18॥ उवाच देवकी चाथ यशोदां प्रति दुःखिता । कंसो नाम मम भ्राता पापिष्ठो दुष्टकर्मकृत् ॥ 19 ॥ दुर्बुद्ध्या निहतास्तेन मम पुत्रास्तथा शृणु । अष्टमो निहितो गर्भो मम नन्दस्य वल्लभे ॥ 20 ॥ भविष्यति सुपुत्रस्तु रूपवान्नात्र संशयः । कंसस्तमपि दुर्धर्षो हनिष्यति ततो मम ॥ 21 ॥ *यशोदा उवाच*—मारोदीस्त्वं प्रिये कान्ते शृणुष्वैव हि गर्भिणी । कन्या मे यदि काप्यस्ति दद्यात्' ते पुत्रदानतः ॥22॥ ततः प्राह यशोदा च कन्यां तुभ्यं सुतार्थतः । सत्यं सत्यं ददे कन्यामित्याह सा सुतार्थिनी ॥23॥ तदा कंसो महादुष्टो प्रतीहारं च

करने लगीं । 16 ॥ उसी समय सुन्दराङ्गी यशोदा नाम की स्त्री ने आकर देवकी के प्रति सुन्दर वाणी द्वारा कहा ॥17॥ हे कान्ते, क्यों कर बारम्बार रुदन करती हो ?हे कल्याणि, अनुग्रहपूर्वक मुझसे कहो ॥18॥ उस दुःखित देवकी ने यशोदा के प्रति कहा—मेरा भाई बड़ा पापी और दुष्टकर्मकर्त्ता है ॥ 19॥ उस भाई ने दुर्बुद्धि द्वारा मेरे पुत्रों को मार डाला । हे नन्दवल्लभे, इस समय मेरे गर्भ में आठवाँ पुत्र है, उसे भी मारेगा इसमें संशय नहीं, वह आठवाँ पुत्र रूपवान् तथा सुपुत्र होगा, कंस उस मेरे पुत्र को भी मारेगा ! ॥20-21॥ यशोदा ने कहा—हे प्रिये, हे कान्ते, मत रो, मेरी सारगर्भित वाणी को सुन । यदि मेरी कोई कन्या उत्पन्न होगी तो तू पुत्र के बदले उस कन्या को ग्रहण कर लेना ॥ 22॥ तदनन्तर यशोदा ने कहा—तुझे सुतार्थ कन्या दूँगी । देवकी ने कहा-सत्य-सत्य कहती हूँ, ऐसा कहने लगी ॥23॥ तदनन्तर कंस ने द्वारपाल (प्रतीहार) से पूछा । देवकी कहाँ पर है ?इस समय घर पर

पृच्छति । विद्यते देवकी कुत्र गृहे चात्र न दृश्यते ॥24॥ ततः प्राह प्रतीहारो दैत्यस्याग्रे वराकवत् । सरोवरं गता स्वामिन् तोयार्थे देवकी शुभा ॥ 25॥ प्रतीहारवचः श्रुत्वा चक्रे कोपं ततो हि सः । तथा तेनैव गच्छ त्वं देवकी यत्र तिष्ठति ॥ 26॥ तेनैव देवकी दृष्टा वाक्यमेतदुवाच ह । किमर्थं हि भगिन्यत्र आगतासि च तद्वद ॥ 27॥ इत्युक्ता कंस-भृत्येन देवकी वाक्यमब्रवीत् । आगताऽहं जलार्थे च पानीयं नास्ति मे गृहे ॥ 28॥ इत्युक्त्वा देवकी तं तु गृहे तत्र समागता । आगत्य स्वगृहे कंसः प्रतीहारमथाब्रवीत् ॥29॥ रक्षितव्या स्वसा चैव स्वगृहाभ्यन्तरे स्थिता । स्वयमेव ततो रक्षां तस्याः कारयते हि सः ॥ 30॥ गृहमध्ये स्वसा क्षिप्ता तालकैरपि यन्त्रिता । दैत्या निवेशिता द्वारे शूल-मुद्गरपाणयः ॥ 31॥

नहीं दिखाई पड़ती है ॥24॥ तदनन्तर द्वारपाल ने दैत्य कंस के आगे नम्रतापूर्वक कहा—हे स्वामिन्! जल के लिए कल्याणी देवकी तालाब पर गई हैं ॥25॥ द्वारपाल की वाणी सुनकर कंस क्रोधित होकर कहने लगा, तू इस समय जहाँ देवकी है वहाँ पर जा ॥26॥ आज्ञा पाकर उस द्वारपाल ने देवकी को देखकर यह वाक्य कहा—हे बहिन, किस कारण से तुम यहाँ पर आयी हो?॥27॥ यों कंस के भृत्य (नौकर) के कहने पर देवकी ने कहा, मेरे घर में जल नहीं है, अतः मैं जल के लिए यहाँ आयी हूँ ॥28॥ यों द्वारपाल से कहने पर देवकी अपने घर पर आ गयीं । इधर कंस भी अपने घर पर आकर द्वारपाल से कहने लगा ॥ 29॥ अपने घर के भीतर रहती हुई इस बहिन की रक्षा करना । और अपने आप कंस भी उस देवकी की रक्षा करता था ॥30॥ अपनी बहिन को

एवं निवेशयित्वा तु गतो विजयमन्दिरे । न सुप्यति दिवारात्रावेवं रक्षति देवकीम् ॥32॥ सिंहराशिगते सूर्ये गगने जलदाकुले । मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्धरात्रिके ॥33॥ शशाङ्के वृषराशिस्थे नक्षत्रे रोहिणीबुधे । योगे सौभाग्यसंयुक्ते अर्धरात्रौ विधूदये ॥34॥ अर्धरात्रान्तरादूर्ध्वं घटिकापि यदा भवेत् । श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तं फलं प्राप्नोति नान्यथा ॥35॥ कृष्णजन्म महेन्द्राभून्मुहूर्ते विजयाभिधे । कृष्णप्रतापतो द्वारं प्रमुक्तं तत्क्षणादभूत् ॥36॥ मूर्च्छाङ्गतास्तदा दैत्या द्वारस्था अस्त्रपाणयः । उत्थितो वसुदेवश्च देवक्याः पुरतस्तदा ॥37॥ उवाच देवकी चाथ भर्तारं प्रति सत्त्वरम् । उत्तिष्ठ व्रज

घर के भीतर कर दरवाजों में ताले बंद कर और बाहर शूल एवं मुद्गर लिये हुए दैत्यों को नियुक्त किया ॥31॥ इस प्रकार घर में रखकर अपने विजय-मन्दिर में चला गया । यहाँ पर भी दिन-रात नहीं सोता था, यों देवकी की रक्षा करता था ॥32॥ (यों रक्षा करते हुए) एक समय-सिंह राशि के सूर्य में, आकाशमण्डल में जलधारी मेघों ने अपना जमाव डाला, भाद्रपद महीने की कृष्णपक्ष की अष्टमी आधी रात को वृषराशि के चन्द्रमा में, रोहिणी नक्षत्र में, बुधवार में, सौभाग्य योग से संयुक्त चन्द्रमा के अर्धरात्रि में उदय होने पर, आधी रात के उत्तर एक घड़ी जब हो जाय तो श्रुति, स्मृति, पुराणोक्तफल प्राप्त होता है । इसमें तनिक भी संशय नहीं है । हे इन्द्र, ऐसे विजय नामक शुभ मुहूर्त में कृष्ण का जन्म हुआ और कृष्ण के प्रताप से उसी क्षण दरवाजे खुल गये ॥ 33-36॥ इधर द्वारस्थ अस्त्रधारी सब दैत्य मूर्च्छित हो गये । सोकर वसुदेव जी देवकी के आगे उठे ॥37॥ देवकी ने जल्दी ही अपने

भो स्वामिन् पुत्रमादाय गोकुलम् । नन्दगोपकुले रम्ये यशोदायै ददस्व च ॥38॥ यशोदायाः सुता जाता तदर्थं यादवोत्तम ॥39॥ तदस्तु देवकीभर्ता पुत्रमादाय यत्नतः । यमुनायां गतो मार्गे पूर्णायां बहुभिर्जलैः ॥40॥ तां दृष्ट्वा जलसम्पूर्णां वसुदेवः सुविस्मितः । उवाच मधुरं वाक्यं मम मृत्युरभूदिह ॥41॥ पुत्रस्यापि च सन्देह इहाद्य समुपस्थितः । इति सञ्चित्य बहुधा प्रविष्टो यमुनाह्रदे ॥42॥ कृष्णाङ्घ्रिस्पर्शनादेव सरिदल्पजलास्त्वभूत् । क्षणमात्रं गता तत्र स्वल्पत्वं यमुना-नदी ॥43॥ ततः स गोकुले गत्वा नन्दस्य गृहसन्निधौ । यथा चापि तया प्रोक्तं बालकश्च समर्पितः ॥44॥ तस्यै दत्त्वा तु पुत्रं च स्ववाक्यं प्रतिपालयन् । पुनरेव समायातः कन्यामादाय सत्त्वरम् ॥45॥

स्वामी से कहा-हे स्वामिन्, उठो, इस पुत्र को लेकर गोकुल में जाओ ॥38॥ वहाँ पर इस पुत्र को नन्दगोप के रमणीय घर में यशोदाजी को देना । तदनन्तर, देवकी के पति वसुदेवजी यत्न से पुत्र को लेकर बहुत जल वाले मार्ग से जाते हुए उस पूर्ण जल वाली नदी को देखकर बड़े चिन्तित हुए और मधुर वाणी से कहा-कि मेरी मृत्यु यहाँ पर होगी ॥39-41॥ और पुत्र का भी सन्देह यहाँ पर उपस्थित हो गया । यों मन में विचार कर बहुत तेज वाली यमुना नदी में प्रवेश किया ॥42॥ बहुत जलपूर्ण यमुना श्रीकृष्णजी के चरण-स्पर्श करते ही क्षण मात्र में थोड़े जल वाली हो गयीं ॥43॥ तदनन्तर वसुदेव गोकुल में आकर नन्द के घर के समीप में जैसे उनकी धर्मपत्नी ने कहा था, वैसे ही उस बालक को समर्पित कर दिया ॥44॥ अपने वचन की रक्षा करते हुए उसे यशोदा

पूर्ववद्यमुनां लङ्घ्य मथुरायां समागतः । देवक्याश्च ततः कन्यां भर्त्रा तेन समर्पिता ॥ 46॥ ततः प्रभाते सर्वे ते उत्थिता दानवाश्च ये । क्रोधमासाद्य कंसोऽयं प्रतीहारमथाब्रवीत् ॥47॥ देवक्यामद्य किं जातं ततो मम निवेदय । इति श्रुत्वा प्रतीहारो देवक्याः पुरतो गतः ॥48॥ दृष्ट्वा कन्यां तदा तेन रुदतीं च मुहुर्मुहुः । निवेदिताथ दैत्याय कन्या जातातिशोभना ॥49॥ तव स्वसरि भो राजन्नाज्ञां संदातुमर्हसि । कंसः कोपसमाविष्टः प्रतीहारमथाब्रवीत् ॥50॥ कौलको नाम रजकस्तस्मै कन्यां प्रयच्छतु । प्रतीहारेण तत्कर्म कृतं शीघ्रं दुरात्मना ॥51॥ धृत्वा करतले कन्यां शिलायां प्राक्षिपद् द्रुतम्। सा च कन्या हरेर्माया बाहुमुत्पाद्य खे गता ॥52॥ अन्तरिक्षगता वाक्यं विद्युद्रूपाऽब्रवीत्तदा ।

को पुत्र देकर फिर जल्दी ही आकर कन्या अर्पण कर दिया ॥45-46॥ तदनन्तर प्रातःकाल वे सब दानव उठ गये और क्रोधी कंस ने द्वारपाल से कहा–कहो, आज देवकी के क्या हुआ ?इस बात का मुझसे निवेदन करो । यह सुनकर द्वारपाल देवकी के समीप गया ॥47-48॥ वहाँ पर बारम्बार रुदन करती हुई कन्या को देख कर दैत्य से प्रार्थना की, अति सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई है ! ॥49॥ हे राजन्, आप बहिन को आज्ञा दीजिये । यों सुन क्रोधित हो कंस ने द्वारपाल से कहा ॥50॥ कौलिक नाम वाले रजक (धोबी) को कन्या दे दो । उस दुरात्मा द्वारपाल ने जल्दी ही उस कन्या को धोबी को दे दिया ॥51॥ उस धोबी ने हाथ में लेकर जल्दी ही पत्थर की चट्टान पर फेंक दिया । लेकिन विष्णु की माया से वह कन्या बाहुओं को उखाड़ कर आकाश में चली गयी ॥52॥ तदनन्तर अन्तरिक्ष में

बालको विद्यते तत्र नन्दगोपगृहे वरे ॥53॥ तस्मान्मृत्युश्च दैत्यस्य कंसाख्यस्य भविष्यति । कृष्णरूपी जगन्नाथः स एव हि न संशयः ॥54॥ अहं च वैष्णवी नाम तस्य माया जगद्गुरोः । इत्युक्त्वा सा गता स्वर्गे कंसस्तु श्रुतवान् गिरम् ॥55॥ अतीव क्रोधसंविष्टो नन्दगोपगृहे वरे । तेन स्त्री प्रेषिता तस्य वधार्थं मृत्युसन्निभा ॥56॥ गता सा बालकायैव स्तनदानं चकार ह । बालो न मुञ्चते तां तु कृष्ण कृष्णेति साऽकरोत् ॥57॥ मोचिता सा तदा तेन विह्वला सा तदाऽभवत् । ततः सा पुनरायाता तत्रासौ दानवेश्वरः ॥58॥ निवेदयित्वा वृत्तान्तमात्मीयं च हरेस्तदा । नैव कंस ! शिशुः सोऽपि भुवनेशः स ईश्वरः ॥59॥ ततः

आकर विद्युत् रूपा होकर बोली–नन्दगोप श्रेष्ठ के घर में बालक है । उसके द्वारा दैत्य कंस की मृत्यु होगी । वह कृष्णरूपी विष्णु है, इसमें तनिक सन्देह नहीं है । सारांश यह है कि-नन्दगोप के घर तुझको मारने वाले ने जन्म ले लिया है, उसी के हाथों तेरा मरण होगा । यह ध्रुव है ॥53-54॥ मेरा नाम तो वैष्णवी है और मैं जगत् गुरु भगवान् विष्णु की माया हूँ । यों कहकर वह स्वर्ग में चली गयी । इधर कंस ने ऐसी वाणी सुनी ॥55॥ वह कंस अतीव क्रोधित हो नन्दगोप के उत्तम घर में एक स्त्री को भगवान् कृष्ण का वध करने के लिए भेजा ॥ 56॥ उस स्त्री ने वहाँ आकर प्रेम से बालक को स्तन पिलाया । स्तन-पान करते हुए कृष्ण उसके स्तन द्वार से प्राण खींचने लगे । इससे उस स्त्री ने 'कृष्ण-कृष्ण' की रटना लगा दी ॥57॥ उस शिशु ने उसके स्तन छोड़ दिये तो वह व्याकुल हो गयी । तदनन्तर जहाँ से आई थी वहीं दानवेश्वर के पास चली गयी ॥58॥ उसने अपनी और कृष्ण सम्बन्ध की

कंसेन दुर्धर्षो ब्राह्मणः प्रेषितस्तदा । वधाय वासुदेवस्य गतस्तस्यैव सन्निधौ ॥60॥ संदृष्टो ब्राह्मणः पत्न्या नन्दगोपस्य चागतः । उवाच ब्राह्मणं तं च मम पुत्रोऽत्र विद्यते ॥61॥ तस्य रक्षा त्वया कार्या गृहस्य च तथा द्विज । पानीयार्थं गमिष्यामि तडागेऽत्राब्रवीत्तु तम् ॥62॥ ततः स बालकं हन्ति तद्वक्त्रं दधिभाजने । प्रक्षिप्तं वासुदेवेन ततो वक्त्रं निकृष्टवान् ॥63॥ नन्दपत्नी ततो यातो दृष्ट्वा ब्राह्मणवक्त्रकम् । दधिभाण्डे तु कोपेन ब्राह्मणं प्रति साब्रवीत् ॥64॥ किं कृतं भवता चैव दधिपानं च यत्कृतम् । तुभ्यं किन्तु न दास्यामि दधिनिष्कासितं ततः ॥65॥ आगत्य च द्विजः कंस न चासौ बालको हरिः ।

सारी कथा सुना दी । हे कंस ! उसे साधारण बालक नहीं समझना चाहिए, वह तो 'भुवनेश' और ईश्वर हैं ॥51॥ तदनन्तर दुरात्मा कंस ने एक ब्राह्मण देवता को उसे मारने के लिए नन्द के समीप भेजा ॥60॥ नन्द की पत्नी यशोदा ने उस ब्राह्मण को आते देख कर कहा–हे ब्राह्मण, मेरा 'पुत्र' यह है ॥61॥ उस लड़के की माता यशोदा ने कहा-हे द्विज ! तुम इस बालक और इस घर की रक्षा करो, मैं तालाब पर पानी के लिए जा रही हूँ ॥62॥ तदनन्तर यह ब्राह्मण उस बालक को मारने लगा । इससे कृष्ण ने उसके मुख को दही वाले बर्तन में कर दिया ॥63॥ तदनन्तर नन्दपत्नी ने वहाँ आकर उस ब्राह्मण के मुख में दही लगा देखा तो क्रोध से कहने लगी– ॥64॥ तुमने यह क्या किया, जो दही का पान कर लिया ?अब तुम्हें दही नहीं दूँगी ॥65॥ इधर वह ब्राह्मण कंस के समीप आकर कहने लगा । वह बालक तो भगवान् विष्णु हैं और त्रैलोक्य के नाथ हैं, ऐसा जानना आवश्यक है ।

त्रैलोक्यनाथो भगवान् ज्ञातव्यो नात्र संशयः ॥66॥ कंस त्वामेव भगवान् वधिष्यति न संशयः । एवं हि बहवस्तेन ह्युपाया देवनायक ॥ 67॥ कृताः कृष्णवधार्थाय तस्य मृत्युः कथं भवेत् । इति सञ्चिन्त्य वै कंसस्तद् वधार्थं तु मूढधीः ॥68॥ केशि-दैत्योऽश्वरूपेण प्रेषितः कंसपूजितः । कृष्णेनारुह्य संपीड्य केशी प्राणैर्वियोजितः ॥61॥ अरिष्टः प्रेषितस्तेन वृषरूपो महासुरः । गत्वा निकेतने रम्ये यत्रास्ते शिशुरूपधृक् ॥70॥ युध्यमानं ततस्तं तु वृषयोरन्तरे हरिः । कृष्णो विभज्य शृङ्गे त्वरितं हतवान् क्षणात् ॥71॥ कालाख्यः काकरूपेण प्रेषितो दानवेन च । कृष्णपार्श्वे समायातो हरेश्चतुर्विधान्तकृत् ॥72॥ काकोऽपि गृह्य कृष्णेन गले संमर्दितस्तदा । पक्षौ कराभ्यामुत्पाट्य कालाख्यः

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिए ॥66॥ वे तुम्हारा निश्चित वध करेंगे । यों ब्राह्मण की वाणी सुन कर, कंस ने वासुदेव नामक (कृष्ण) को मारने के लिए बहुत ही उपाय किये ॥67॥ वह मूर्ख कंस कृष्ण को मारने का उपाय दिन-रात सोचा करता था ॥68॥ कंस से पूजित हो 'केशी नामक' दैत्य ने घोड़े का रूप धारण कर गोकुल में आकर कृष्ण को अपने ऊपर चढ़ाने मात्र से ही अपने प्राणों से हाथ धो बैठा ॥61॥ फिर महासुर कंस ने 'अरिष्ट नामक' दैत्य को बैल के रूप मे भेजा । जहाँ शिशु रूप धारण किये हुए कृष्ण भगवान् रमणीय स्थान पर थे, वहाँ वह आया ॥70॥ दोनो बैलों के मध्य में युद्ध करते हुए श्रीकृष्ण ने उस दैत्य रूपी बैल के सींगों को क्षण भर में तोड़ कर मार डाला ॥71॥ फिर दानव कंस ने 'कालाख्य' नामक दैत्य को कौए (कागले) के रूप में भेजा । यह कृष्ण के समीप आया ॥72॥

क्षेपितस्तदा ॥73॥ कथं मृत्युर्भवेत्तस्य कृष्णाख्यबालकस्य हि । एवं सञ्चिन्त्य बहुधा प्रतीहारमथाब्रवीत् ॥74॥ नन्दमानय क्षिप्रं त्वं गत्वा तत्र ममाज्ञया । इति श्रुत्वा प्रतीहारो ह्यानयामास नन्दकम् ॥ 75॥ ततस्तस्मै ददौ चाज्ञा पारिजातं समानय । अन्यथा त्वां हनिष्यामि इति मे निश्चिता मतिः ॥76॥ एवमस्त्विति तेनोक्तं गतोऽथ स्वगृहे तदा । एवं निवेदितं तेन भार्यायाः पुरतस्तदा ॥77॥ एवं च श्रुतवान् कृष्णः क्रीडन् स बालकैः सह । आदाय कन्दुकं कृष्णो यमुनायामथाक्षिपत् ॥ 78॥ पारिजातकपुष्पार्थं कन्दुकार्थमिहान्तरे । कदम्बतरुमारुह्य पतितो यमुनाहरिः ॥79॥ स तदा पतितस्तत्र पतत्येव यदा गतः ।

श्रीकृष्ण बालक ने कौए (कागले) को पकड़ कर उसके गले को दबोच (मसक) दिया और उसके पंखों को उखाड़ दिया, जिससे कालाख्य जमीन पर गिर पड़ा ॥73॥ कंस इस बात को बराबर दिन-रात सोच रहा था कि बालक कृष्ण की मृत्यु कैसे होगी । इस प्रकार के विचार में मग्न कंस ने द्वारपाल से कहा-॥74॥ मेरी आज्ञा है कि तुम नन्द के यहाँ जाकर कहो कि आपको महाराज कंस बुला रहे हैं । यह सुनकर द्वारपाल नन्द को बुला लाया ॥ 75॥ तदनन्तर कंस ने नन्दजी को आज्ञा दी कि पारिजात के पुष्प को ले आओ । नहीं तो तुमको जान से मार दूँगा-यह मेरा निश्चित मत है ॥76॥ यह सुनकर नन्द जी 'एवम् अस्तु' कह अपने घर गये । वहाँ अपनी पत्नी से सारी बातें कह सुनायीं ॥77॥ इधर श्रीकृष्ण ने भी बात सुनकर बालकों के साथ खेलते हुए 'गेंद' को लेकर यमुना नदी में फेंक दिया ॥78॥ भगवान् श्रीकृष्ण गेंद के बहाने मुख्यतः पारिजात के पुष्पों को ले आने के लिए

यत्र तिष्ठति नागेन्द्रः कालियो नाम विश्रुतः ॥80॥ अथ श्रीधरनाम्ना हि गोपालेन महात्मना । वार्तोक्ता च यशोदाग्रे तव पुत्रः प्रतापिनी ॥ 81॥ पतितो यमुनामध्ये कन्दुकेन सह स्वयम् । इति श्रुत्वा यशोदा तु मुक्तकेश्यतिवेगतः ॥82॥ याता सा यमुना यत्र विद्यते सूर्यपुत्रिका । दृष्ट्वा तीरं तदा शून्यमत्यन्ता विह्वलाऽभवत् ॥ 83॥ यद्यहं बालकं पश्ये तदा हे यमुने नदी । संप्राप्ते भाद्रमासे तु करिष्ये रोहिण्यष्टमीम् ॥ 84॥ दुर्लभं च दया दानं दुर्लभाः सज्जना जनाः । दुर्लभं ब्राह्म[illegible] जन्म दुर्लभा रोहिण्यष्टमी ॥85॥ दुर्लभं जाह्नवीस्नानं दुर्लभैकादशी मता । दुर्लभं च गया श्राद्धं दुर्लभा रोहिण्यष्टमी ॥86॥ अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । दानानि सर्वतीर्थानि व्रतानां च शतानि तु ॥87॥

कदम्ब के पेड़ पर चढ़कर यमुना में कूद गये ॥79॥ अनन्तर श्रीधर नाम के गोपाल महात्मा ने सारा समाचार यशोदा माता के आगे कह सुनाया कि ॥80-81॥ कृष्ण गेंद के सहित स्वयं ही यमुना नदी के मध्य कूद गये हैं । यह बात सुनकर यशोदा केश खुले ही बड़े वेग से, जहाँ सूर्य की पुत्री यमुना नदी थी गयीं, वहाँ किनारे पर किसी को न देख अत्यन्त व्याकुल हो गयीं ॥82-83॥ हे यमुना नदी, यदि मैं बालक को देखूँगी तो भाद्रपद मास की रोहिणी युक्त अष्टमी व्रत करूँगी ॥84॥ दया, दान, सज्जन प्राणी, ब्राह्मण कुल में जन्म, रोहिणी युक्ता अष्टमी, गंगाजल, एकादशी, गयाश्राद्ध और रोहिणी व्रत ये सभी दुर्लभ हैं ॥85-86॥ हजार अश्वमेध यज्ञ, सैकड़ों राजसूय यज्ञ, सैकड़ों दान, तीर्थ और व्रत, करोड़ों कपिला दान से जो फल देता है वह सब कृष्णाष्टमी

कोटियज्ञप्रदानं च कोटि: स्यात्कपिला तथा । दत्त्वा यत्फलमाप्नोति कृष्णाष्टम्यां तु तद्भवेत् ॥88॥ *इन्द्र उवाच*–कथयस्व मुनिश्रेष्ठ ! बालकेन तु यत्कृतम् । आगतश्चैव पाताले स्नाप्यमाने जलाशये ॥89॥ *नारद उवाच*–शृणु त्वं मे वरं वाक्यं तत्र तेनैव यत्कृतम् । बालकेनैव कृष्णेन नागराजेन तेन च ॥90॥ नागराजस्य या पत्नी प्राह तं बालकं प्रति । कुतोऽत्रागम्यते भद्र किमर्थं कथ्यतामिह ॥91॥ द्यूतक्रीडा कृता किन्तु द्रव्यं तत्रैव हारितम् । कङ्कणं मुकुटं चाथ हारकं मणिभिर्युतम् ॥ 92॥ गृहाण त्वं गृहं गच्छ यावत् स्वपिति मे प्रिय: । कालियो नाम सर्पोऽयमन्यथा खादयिष्यति ॥93॥ *बालक उवाच*–शृणु वार्ता च मे कान्ते यदर्थमहमागत: । कालियस्य शिरोद्यूते कंसेन सह

के घत से प्राप्त हो जाता है ॥87-88॥ इन्द्र ने कहा–हे मुनिश्रेष्ठ, नारद ! यमुना नदी में कूदने के बाद उस कृष्ण बालक ने जलाशय में स्नान कर पाताल में जाकर क्या किया ?वह सब मुझसे कहिए ॥89॥ नारद ने कहा–हे इन्द्र ! वहाँ पर बालक कृष्ण और नागराज ने क्या किया; वह सब उत्तम वृत्तान्त सुनो ॥90॥ उस बालक (कृष्ण) से नागराज की पत्नी ने कहा–हे भद्र ! यहाँ पर किस स्थान से आये हो और क्या प्रयोजन है ?॥91॥ नागपत्नी ने कहा–हे कृष्ण! क्या तूने जुआ खेला है, जिसमें सारा धन हार गया है ? (यदि यह बात ठीक है तो) कङ्कण, मुकुट और मणियों का हार लेकर अपने घर जाओ, क्योंकि ये अभी शयन कर रहे हैं । नहीं तो मेरे प्रिय पति नागराज भक्षण कर जायेंगे ॥92-93॥बालक ने कहा–हे कान्ते! जिस प्रयोजन से मैं आया हूँ वही कथा सुनो । कालियनाग

हारितम् ॥94॥ कोपमाना तदा सा च भर्तारं प्रति चाब्रवीत् । किं शेषनाग भो स्वामिन् गृहे शत्रु: समागत: ॥95॥ उत्थितस्तत्र नागेन्द्रो युयुधे हरिणा सह । मूर्च्छां गतस्तदा कृष्ण: सस्मार गरुडं तदा ॥96॥ विहङ्गराजस्तत्रैव प्रयातस्तत्क्षणाद्धरिम् । आरुह्य गरुडं तदा निर्जित: कालियस्तदा ॥97॥ कृष्णोऽयमिति च ज्ञात्वा कालिय: प्रणमाम तम् । पारिजातोद्भवान्याशु पुष्पाणि सुबहून्यपि ॥98॥ प्रक्षिप्य मुकुटे तस्यारोहेत्तत्रैव भोगिनम् । प्रस्थित: स्वगृहे कृष्ण: सन्त्यज्य गरुडं तदा ॥ कालियस्य तदा कान्ता जल्पमाना मुहुर्मुहु: । अहमेव न जानामि कृष्णं त्वां भुवनेश्वरम् ॥ 100॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन । रक्ष रक्ष महादेव भर्तारं देहि मे हरे ॥101॥ *श्रीकृष्ण उवाच*–कंसो नाम

के सिर को कंस के साथ जुआ खेलने में हार गया हूँ । तदनन्तर नाग की पत्नी क्रोधित हो अपने पति से कहने लगी । हे स्वामिन्, हे शेषनाग, आपके घर शत्रु आया है ॥94-95॥ यह बात सुनकर नागेन्द्र उठा और हरि के साथ युद्ध करने लगा । युद्ध में कृष्ण को मूर्च्छा आ गयी । मूर्च्छा के हटने पर गरुड़ का स्मरण किया ॥96॥ उसी क्षण विहंगराज (गरुड़) वहाँ पर आ गये । उनके आते ही श्रीकृष्ण उसी गरुड़ पर चढ़कर कालियनाग को युद्ध में जीत लिये ॥97॥ नाग ने इनको श्रीकृष्ण भगवान् जान कर प्रणाम किया और पारिजात से उत्पन्न बहुत से पुष्पों को मुकुट में रख दिया । तदनन्तर कृष्ण अपने घर चले गये । वहाँ गरुड़ को छोड़ दिया ॥98-91॥ तदनन्तर बारम्बार गिड़गिड़ाती हुई कालिय नाग की पत्नी ने कहा–मैं भुवनेश्वर कृष्ण को नहीं जान पायी ॥ 100॥ हे जनार्दन, मन्त्रों

महादैत्यः पुरतस्तस्य सर्पिणी । नीत्वा तत्र विमोक्ष्येऽहं भर्तारं तव भागिनम् ॥102॥ सत्यमेतन्मयोक्तं च गच्छ त्वं स्वगृहं ततः । निःसृतो यमुनामध्यात् स कृष्णः पन्नगस्तदा ॥103॥ कालियस्य तु शब्देन त्रैलोक्यं कम्पितं तदा । मथुरां नगरीं प्राप्तः कंसो यत्रैव तिष्ठति ॥104॥ कमलानि तदा दत्त्वा यत्र गोपेक्षितस्तदा । यमुनामध्यमास्थाय गतः सर्पो जलाशयम् ॥105॥ कंसोऽपि विस्मयाविष्टस्तदाभूद् विह्वलाननः । हर्षयुक्तस्तदा कृष्णः प्राप्यमानं तु गोकुले ॥106॥ यशोदा हर्षसंयुक्ता कृतवत्युत्सवं बहु । गीतं नृत्यं च वादित्रं तदाऽभूद् गोकुले शुभे ॥107॥ *इन्द्र उवाच*– हर्षयुक्तास्तदा लोका आयाते

से रहित, क्रियाओं से रहित, भक्तिभावों से रहित मेरी रक्षा करो । हे महादेव, हे हरे, मेरे स्वामी को मुझे दे दो ॥101॥ श्रीकृष्ण ने कहा–हे सर्पिणी, महादैत्य कंस के सामने तेरे पति को ले जाकर फिर छोड़ दूँगा ॥102॥ यह सत्य कहता हूँ, अतः तुम अपने घर जाओ । इस प्रकार करते हुए यमुना नदी के मध्य से नाग सहित श्रीकृष्ण निकले ॥103॥ तदनन्तर कालिय के शब्द से तीनों लोक काँप गया । फिर कृष्ण और पन्नग मथुरा नगरी में, जहाँ कंस रहता था, वहाँ चले आये ॥ 104॥ वहाँ कमलों को देकर यमुना के मध्य जलाशय में वह सर्प चला गया ॥105॥ इधर कंस विस्मित हो गया और कृष्ण प्रसन्नता से गोकुल चले गये ॥106॥ (उनके गोकुल पहुँचने पर) प्रसन्न हो यशोदा माता ने बहुत प्रकार के उत्सव किये । शुभ गोकुल में गाना, नाच हुआ और बाजे बजे ॥107॥ इन्द्र ने पूछा–संसार के प्राणी बालक के आने पर बहुत आनन्दित हुए और हे नारद! फिर श्रीकृष्ण ने क्या-क्या चरित्र किया?

बालकेऽभवन् । किं करोति तदा कृष्णश्चरितं तस्य मे वद ॥108॥ *नारद उवाच*– मथुरायां पुरे रम्ये यमुनायाश्च दक्षिणे । कंसभ्राता महतेजश्चाणूरो नाम नामतः ॥109॥ मल्लयुद्धे समायातस्तेनोक्तस्तु जनार्दनः । युद्धं प्रवर्तते शक्र ततस्तत्रैव मल्लयोः ॥110॥ तुर्यशंखरवैश्चैव कंसः केशी च पश्यति । कण्ठपादं ततो दत्त्वा चाणूरो निहतो युधि ॥111॥ निशान्ते च तदा केशी कंसभ्राताऽतिदारुणः । सोऽप्येवं निहतो दैत्यः संग्रामे केशवेन च ॥ 112॥ जनाः स्तुवन्ति तं कृष्णं दैत्येन्द्रे निहते सति । विषादं य गताः सर्वे दैत्यास्तस्मिन् हते सति ॥113॥ बालकेन हतो दैत्यः किन्त्वेतन्महदद्भुतम् । कोपेन महताविष्टः कंसोऽभूत्तत्र एव च ॥ 114॥ प्रतीहारं समाहूय प्राह तं रक्तलोचनः । दैत्यानाहूय ताञ्छीघ्र

यह सब मुझसे कहिए ॥108॥ नारद ने कहा–रमणीय मथुरा नगर में यमुना नदी के दक्षिण हिस्से में कंस का महातेजस्वी चाणूर नामक भाई रहता था ॥109॥ उस चाणूर ने जनार्दन से मल्लयुद्ध के लिए अपनी घोषणा की । हे शक्र, कृष्णजी का उसके साथ मल्लयुद्ध होने लगा ॥110॥ भेरी, शंख और मृदंग के शब्दों के साथ कंस और केशी नामक दैत्य युद्ध को देख रहे थे । श्रीकृष्ण जी ने गले में अपने पैर को टेका युद्ध में चाणूर दैत्य को मार डाला ॥111॥ तदनन्तर कंस का भाई अति दुष्ट दैत्य केशी को भी निशान्त में युद्ध में केशव ने मार दिया ॥112॥ दैत्येन्द्र (केशी) के मरने पर सब प्राणी उस श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे और दैत्य-समूह तो उसे केशी के मरने पर दुःखित हुए ॥113॥ श्रीकृष्ण बालक के द्वारा दैत्य मारा गया, यह महान् आश्चर्य है । यों सोच वहीं पर बड़े क्रोध

ये केचिच्छस्त्रपाणयः ॥115॥ ततः सर्वे महादैत्याः खड्गशक्त्यसिपाणयः । आज्ञां प्राप्य समायाता युद्धं युद्धविशारदाः ॥116॥ *कंस उवाच*–युद्धं कुर्वन्तु भो दैत्याः सर्व एव ममाज्ञया । अनेन सह कृष्णेन प्रयतं युद्धकोविदम् ॥117॥ ततस्ते युयुधुः सर्वे शस्त्रास्त्रैर्युद्धकोविदाः । कृष्णेन सह वीराश्च ततः सस्मार केशवः ॥118॥ गरुडं पूर्वमित्रं च बलदेवं च माधवः । चक्रं सुदर्शनं चैव पूर्वदेहं च वासव ॥ 119॥ आथायातो बलं चक्रो गरुडो ह्यागतस्ततः । आरुह्य गरुडं पृष्ठे चक्रमादाय सत्त्वरम् ॥ 120॥ केषाञ्चिद् बाहवश्छिन्ना छिन्नग्रीवास्तथापरे । शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ॥121॥

से युक्त हो लाल आँखों को कर कंस ने द्वारपाल को बुलाकर कहा–जल्दी ही शस्त्रों को हाथ में लिये हुए दैत्यों को ले आओ ॥114-115॥ तदनन्तर युद्ध में निपुण खड्ग, शक्ति और तलवार हाथों में लिये बड़े-बड़े सब दैत्य आज्ञा मिलते ही चले आये ॥116॥ कंस ने कहा–हे दैत्यगण, मेरी आज्ञा से तुम सब निरन्तर युद्ध के ज्ञाता कृष्ण के साथ युद्ध करो ॥117॥ युद्ध के ज्ञाता उन दैत्यों ने शस्त्रों और अस्त्रों से कृष्ण के साथ युद्ध किया । हे इन्द्र, इधर केशव ने पूर्व मित्र गरुड़, बलदेव, सुदर्शन चक्र तथा पूर्वदेह (नारायण) का स्मरण किया ॥118-119॥ इसके बाद बलदेवजी सुदर्शन लेकर गरुड़ पर चढ़ कर आये । उन्हें आते हुए देख कर जल्दी ही कृष्ण ने सुदर्शन चक्र को लेकर, गरुड़ पर चढ़ कर कितने दैत्यों की गर्दनों को, कितने के शिरों को और कितने को मध्य से विदीर्ण कर दिया ॥120॥-121॥ किसी का एक हाथ, किसी का एक पैर और किसी को बीच से काट डाला ।

एकबाह्वक्षिचरणाः केचित्तत्र द्विधा कृताः । कृष्णेन चक्रहस्तेन बलदेवेन वै हताः ॥122॥ मुसलेन हलेनैव चक्रेण निहता भुवि । माघमासे च संप्राप्ते सप्तम्यां सितपक्षके ॥123॥ *श्रीकृष्ण उवाच*–तिष्ठ तिष्ठ महादैत्य कंस दुष्ट सुदारुण । युद्धे त्वयि हतेऽत्रैव क्रीडिष्यामि महीतले ॥124॥ इत्युक्तो वासुदेवेन कोपान्तेन महीतले । शिरोरुहं समादाय कंसो दैत्येश्वरस्तदा ॥ 125॥ भ्रामयित्वा विनिक्षिप्तो गतासुरभवत्तदा । हते कंसे महादैत्ये शंखशब्दस्तदाभवत् ॥126॥ लोकाः सर्वे समागम्य वासुदेवं ह्यपूजयन् । जयेति वासुदेवाय समूचुस्ते परस्परम् ॥127॥ पुष्पवृष्टिमुचः सर्वे इन्द्राद्याः सर्वदेवताः । संहृष्टो वासुदेवोऽभूद् बलभद्रो महारथः ॥128॥ नन्दस्य च ततो हर्षो देवकीवसुदेवयोः । यशोदा हर्षसंपन्ना

सुदर्शन और मुसल चक्र वाले हाथ से श्रीकृष्ण तथा बलदेव ने दैत्यों को मार डाला ॥122॥ बलदेवजी ने मुसल तथा हल से, श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से दैत्यों को माघमास की शुक्लपक्ष की सप्तमी को मार कर भूमिशायी बना दिया ॥123॥ श्रीकृष्ण ने कहा–हे महादैत्य, हे नीच कंस, उठो-उठो, मैं इस महायुद्धस्थल में तेरे साथ युद्ध कर तुझे मार कर महीतल पर क्रीड़ा करूँगा ॥ 124॥ यों कहते हुए बड़े क्रोधावेश में महीतल में पड़े हुए दैत्येश्वर के बालों को पकड़ लिया ॥125॥ तदनन्तर उस महादैत्य कंस को घुमा कर पृथ्वी पर पटक दिया, जिससे वह असुर मर गया । उस असुर के मरने पर देवताओं ने शंखों को बजाया ॥126॥ संसार के सब लोगों ने आपस में वासुदेव के लिए 'जय' 'जय' शब्द का उच्चारण किया और श्री वासुदेव की अर्चना की ॥127॥ इन्द्रादि ने आकाश से पुष्प-वर्षा की और वासुदेव तथा महारथी बलभद्र बड़े प्रसन्न हुए ॥128॥

लोकाः सर्वे च हर्षिताः ॥129॥ *इन्द्र उवाच*—ब्रूहि नारद ! यत्नेन कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । किं पुण्यं किं फलं चास्य कथं वै पूजयेद्धरिम् ॥130॥ *नारद उवाच*— भाद्रमासे कृष्णपक्षे ह्यष्टम्यां व्रतमाचरेत् । ब्रह्मचर्यादिसंयुक्तः स्थापयेत् केशवं हरिम् ॥ 131॥ कृष्णमूर्तिं च सौवर्णीं संस्थाप्य कलशोपरि । चन्दनं चारु धूपं च पुष्पाणि कमलानि च ॥132॥ वस्त्रेण वेष्टितं कृष्णं पूजयेद्विधिवत्तथा । अभयामानयेत्तत्र गुडूचीं पिप्पलां तथा ॥133॥ धार्यते शुष्ठिका तत्र कृष्णाग्रे च पृथक् पृथक् ॥ स्थापयेद्दशरूपाणि देवकी च तथैव च ॥ 134॥ मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः । रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्धः कल्की च ते दश ॥135॥

नन्द, देवकी, वसुदेव, यशोदा और संसार के सभी प्राणियों ने हर्ष मनाया ॥ 129॥ इन्द्र ने कहा—हे नारद, इस कृष्णजन्माष्टमी व्रत को कहिए । इसके करने से क्या पुण्य है, क्या फल है और हरि के पूजन की विधि क्या है ?॥130॥ नारद जी ने कहा—भाद्रपद मास की कृष्णजन्माष्टमी को व्रत करे । उसमें ब्रह्मचर्य आदि का पालन करते हुए भगवान् केशव हरि का स्थापन करे ॥ 131॥ श्रीकृष्ण की मूर्ति सोने की बना कर कलश के ऊपर चन्दन, अगरु, धूप, पुष्प, कमल के पुष्पों एवं श्रीकृष्ण को वस्त्र से वेष्टित कर विधिवत् अर्चन करे । गुडूचि, छोटी पीपल और सोंठ को श्रीकृष्ण के आगे अलग-अलग रखे और दश रूपों (दश अवतारों) का तथा देवकी का स्थापन करे ॥132-134॥ हरि के सान्निध्य में—मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्की ये दस अवतारों, गोपिका, यशोदा, वसुदेव,

गोपिकाश्च यशोदां च पूजयेच्च प्रयत्नतः वसुदेवोऽथ नन्दश्च बलदेवोऽथ देवकी । गावो वत्साः कालियश्च यमुना च नदी तथा ॥136॥ गोपांश्च गोपपुत्रांश्च पूजयेद्धरिसन्निधौ । वर्षेऽष्टमे च संपूर्णे तदुद्यापनमाचरेत् ॥137॥ सौवर्णीं प्रतिमां कुर्याद्यथाशक्तिविधानतः । यस्य कूर्मेति मन्त्रेण पूजयेद्विधिवन्नरः ॥138॥ आचार्यं वरयेत्तत्र ब्राह्मणं वरयेत्तदा । अष्टौ ऋत्विजः कार्याः कर्णमात्राङ्गुलीयकम् ॥139॥ विप्राश्च तोषिता नित्यं दक्षिणा-भोजनादिभिः । यः करोति व्रतं चैव भक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥140॥ आयुः कीर्तिं यशो लाभं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् । संजीवन् सर्वमाप्नोति चान्ते मोक्षं च शाश्वतम् ॥141॥ ये केवलां कथां श्रुत्वा मानवाः भक्तिसंयुताः ।पापहानिर्भवेत्तेषां लभते गतिमुत्तमाम् ॥142॥

नन्द, बलदेव, देवकी, गायों, वत्स, कालिय, यमुना नदी, गोपगण और गोप पुत्रगणों का पूजन करे और आठवें वर्ष की समाप्ति पर उद्यापन करे ॥ 135-137॥ यथाशक्ति विधान द्वारा सोने की प्रतिमा बनावे । 'मत्स्य कूर्म' इस मन्त्र से मनुष्य सविधि अर्चन करे ॥138॥ आचार्य, ब्रह्मा और आठ ऋत्विजों का वरण करे ॥139॥ प्रतिदिन ब्राह्मण को दक्षिणा और भोजन द्वारा प्रसन्न करे, जो व्यक्ति जन्माष्टमी के व्रत को करता है वह ऐश्वर्य और मुक्ति को प्राप्त करता है ॥140॥ आयु, कीर्ति, यश, लाभ करता है और इसी जन्म में सब प्रकार के सुखों को भोग कर अन्त में मोक्षपद का अधिकारी हो जाता है ॥141॥ जो लोग केवल भक्तिभाव से कथा सुनते हैं उन लोगों का पाप छूट जाता है और वे उत्तम गति को प्राप्त कर लेते हैं ॥142॥

श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत-कथा भाषाटीकासहित समाप्त

आरती : श्री कुंजबिहारी जी की

आरती कुंजबिहारी की, श्री गिरधर कृष्णमुरारी की। गले में बैजन्ती माला, बजावैं मुरली मधुर बाला, श्रवण में कुण्डल झलकाला, नन्द के आनन्द नन्दलाला, आरती कुंजबिहारी की–श्रीगिरधरकृष्णमुरारी की ॥

गगनसम अंग कांति काली, राधिका चमक रही आली, लतन में ठाढ़े वनमाली, भ्रमर-सी अलक, कस्तुरी तिलक, चन्द्र-सी झलक, ललित छवि श्यामा प्यारी की, आरती कुंजबिहारी की–श्रीगिरधरकृष्णमुरारी की ॥

कनकमय मोरमुकुट बिलसैं, देवता दरसन को तरसैं, गगन से सुमन राशि बरसै, बजै मुरचंग, मधुर मिरदंग, ग्वालिनी संग, अतुल रति गोपकुमारी की, आरती कुंजबिहारी की– श्रीगिरधरकृष्णमुरारी की ॥

जहाँते प्रगट भई गंगा, कलुष कलिहारिणि श्रीगंगा, स्मरण ते होत मोहभंगा, बसी शिव शीश, जटा के बीच, हरै अघ-कीच, चरन छवि श्रीवनवारी की, आरती कुंजबिहारी की– श्रीगिरधरकृष्णमुरारी की ॥

चमकती उज्ज्वल तट रेनू, बज रही वृन्दावन वेनू, चहूँ दिशि गोपि ग्वाल धेनू, हँसत मृदु मंद, चाँदनी चन्द, कटत भवफंद, टेर सुनु दीन भिखारी की, आरती कुंजबिहारी की– श्रीगिरधरकृष्णमुरारी की ॥

श्री कृष्ण जन्माष्टमी व्रत कथा

मन्दिरों एवं धार्मिक उत्सवों में पुस्तक भेंट करने को इच्छुक भक्तजन प्रकाशक से सम्पर्क करें, उन्हें पुस्तकें लागत मूल्य पर दी जाएंगी।



प्रकाश
पब्लिकेशन